सत्य की सर्वाङ्ग साधना

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

एक सिक्के के दो पहलू

सत्य विराट् है। वह अनन्त आकाश की तरह व्यापक है। वह आत्मा का शुद्ध स्वरूप है, यथार्थ अभिव्यक्ति है। अतः विश्व के सभी मूर्धन्य मनीषियों ने एक स्वर से सत्य के महत्त्व को स्वीकार किया है। सत्य की आराधना और साधना ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्येष्ठ आराधना और साधना है। सत्य सूर्य की तरह जन-जन के अन्तर्मानस को आलोकित करने वाला व्रत है, तो असत्य अमा की रात्रि की तरह गहन अन्धकारमय है। सत्य और अहिंसा ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा के अभाव में सत्य अस्तित्वहीन है और सत्य के अभाव में अहिंसा निर्मूल्य। अहिंसा को यदि निषेधात्मक माना जाय तो सत्य उसका विधेयात्मक पक्ष है। सत्य जीवन का मूल तत्त्व है, व्यावहारिक जीवन का मूल आधार है और आध्यात्मिक साधना का प्राण है। सत्य की आराधना के बिना सारी साधना मिथ्या है और सारा व्यावहारिक जीवन भी अस्त-व्यस्त है।

सत्य की परिभाषा

भारतीय चिन्तकों ने सत्य पर गहराई से चिन्तन करके उसकी परिभाषा करते हुए लिखा है—जो शब्द सज्जनता का पावन संदेश प्रदान करता है, सौजन्य भावना को उद्‌बुद्ध करता है और जो यथार्थ व्यवहार का पुनीत प्रतीक है, वह सत्य है। जिस शब्द के प्रयोग से जन-जन का हित होता है, कल्याण होता है, आध्यात्मिक अभ्युदय होता है, वह सत्य है।[१] सत् वह है, जिसका कभी भी नाश नहीं होता। जो नष्ट हो जाता है, वह सत् नहीं है। कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन की जिज्ञासा पर कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा—जो असत् है, उसका कभी जन्म नहीं होता। वह कभी अस्तित्व में नहीं आता और जो सत् है, वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता।[२] सत् हर समय विद्यमान रहता है। वह अतीत काल में भी था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा। वह त्रिकालवर्ती है।

जैनदर्शन के महान् चिन्तक आचार्य उमास्वाति ने सत् की परिभाषा करते हुए लिखा है—जो पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है।[३] जैन दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थ या तत्त्व जड़ और चैतन्य इन दो तत्त्वों में समाविष्ट हो जाते हैं। ऐसा कोई समय नहीं, जिनमें इन दोनों तत्त्वों का कोई अस्तित्व न रहा हो, प्रत्येक वस्तु द्रव्य रूप से नित्य है, पर्याय रूप से उसमें उत्पाद भी होता है, और विनाश भी होता है। बदलती हुई पर्यायों में भी जो अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड़ता, वह द्रव्य है। पदार्थ का मूल गुण हर समय अपने ही स्वरूप में स्थित रहता है। सत्य यथार्थ है, वास्तविक है, उसमें किसी भी प्रकार का सम्मिश्रण नहीं है। इसीलिए सत् से सत्य शब्द निष्पन्न हुआ है। जिसका अस्तित्व तीनों कालों में है वह सत् है वही सत्य है।[४] सत्य शब्द तथ्य के अर्थ में भी व्यवहृत हुआ है। जो वस्तु जैसी देखी है, या सुनी व समझी है, उस वस्तु को जन-जन के हित के लिए उसी रूप में कहना, वचन के द्वारा उस तथ्य को प्रकट करना ही सत्य है। महर्षि पतंजलि ने व्यास-भाष्य में सत्य का लक्षण बताते हुए कहा—**सत्यं यथार्थं वाङ्मनसी यथादृष्टं यथाश्रुतं।**[५]

सत्य की महिमा

एक जिज्ञासु ने भगवान् महावीर से पूछा—इस विराट् विश्व में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो सारपूर्ण हो! भगवान् ने कहा—

१. 'सद्भ्यो हितं सत्यम्।', आचार्य शांतिसूरि : उत्तराध्ययन टीका

२. 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।', गीता

३. 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।', तत्त्वार्थसूत्र, ५।२९

४. 'कालत्रये तिष्ठतीति सद् तदेव सत्यम्।'

५. योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस लोक में सत्य ही सारभूत है।[1] सत्य रहित जो भी है, वह निस्सार है क्योंकि सत्य समस्त भावों का प्रकाश करने वाला है।[2] सत्य की महत्ता प्रदर्शित करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—सत्य महासागर से भी अधिक गम्भीर है, चन्द्र से भी अधिक सौम्य है और सूर्यमण्डल से भी अधिक तेजस्वी है।[3]

सत्य केवल वाणी तक ही सीमित नहीं है। वह अभिव्यक्ति का ही प्रकार नहीं है। सत्य का जन्म सबसे पहले मन में होता है और बाद में वह वाणी के द्वारा व्यक्त होता है तथा आचरण के द्वारा वह मूर्त्तरूप लेता है। यदि मन में अलग विचारधारा चल रही है, वाणी से अन्य विचार उगले जा रहे हैं और आचारण दूसरे ही रूप में किया जा रहा है, तो वस्तुतः वह व्यक्ति सत्यनिष्ठ नहीं है। उसके जीवन में यथार्थता नहीं है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति के मन, वचन और आचरण में एकरूपता रहती है, अनेकता नहीं! उसके अन्तर्मानस में जो चिन्तन चलता है, वही वाणी के द्वारा मूर्त्त रूप लेता है और वही आचरण के द्वारा जन-जन को अभिनव प्रेरणा देता है। यदि मन में असत्य का विष व्याप्त है और वाणी से सत्य का अमृत बरस रहा है तो वह केवल वाक्छल है। वह वाक्छल दूसरों के विनाश के लिए है। ऐसी मधुर वाणी जो सत्य प्रतीत होती है किन्तु यथार्थतः सत्य नहीं है, वह किंपाक फल के सदृश है। जिसमें हलाहल विष रहा हुआ है। ऐसे व्यक्ति को भारतीय चिन्तकों ने धूर्त्त माना है।

वह विषकुम्भपयोमुख है। वह महात्मा नहीं, दुरात्मा है। भगवान् महावीर ने कहा—सत्य की निर्मल धारा सर्वप्रथम मन में बहनी चाहिए, फिर वचन में, और फिर आचरण में।[4] जिसके मन, वचन और काया में सत्य समान रूप से प्रवाहित है, वह महात्मा है—पवित्र आत्मा है।[5] सत्य जब तक जीवन के अणु-अणु में व्याप्त नहीं होता, तब तक उसमें चमत्कार पैदा नहीं होता है। कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा ग्रहण करता है कि मैं अमुक कार्य कर दूंगा, यदि वह कार्य नहीं करता है तो वह सत्य का आचरण नहीं हुआ! राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए ही सब कुछ छोड़ दिया था। प्रश्न व्याकरण में कहा है—"जैसा कहा है वैसा क्रिया के द्वारा साकार करना सत्य है!" **सच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ** (संवरद्वार)।

सत्य प्रज्वलित प्रदीप

सत्य जगमगाता हुआ एक प्रज्वलित प्रदीप है, जो जन-जन को आलोक प्रदान करता है। सत्य की चर्चा नहीं, अर्चा आवश्यक है। एक बार पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा—"मैंने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी को जीवन में कभी असत्य बोलतेहुए नहीं देखा और न सुना ही!" राजनीति में रहकर भी सत्य का प्रयोग जीवन में किया जा सकता है। जो लोग यह समझते हैं कि राजनीति में असत्य के बिना कार्य नहीं चल सकता, उनके लिए प्रस्तुत उदाहरण सर्च-लाइट की तरह उपयोगी है।

जीवन की ऊष्मा : सत्य

सत्य मानव के उज्ज्वल चरित्र का सजग प्रहरी है। वह प्रहरी जब तक सजग रहता है, तब तक बुराइयाँ फटकने नहीं पातीं। शरीर में से ऊष्मा यदि निकल जाये तो व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। जब तक ऊष्मा है, शरीर के कण-कण में प्राण है, तब तक वह जीवित है। उसमें चमक-दमक है, वह बढ़ता है, सुन्दर बना रहता है और प्राण निकलते ही वह सड़ता है, गलता है, उसमें कीड़े कुलबुलाने लगते हैं, उस मुर्दे शरीर का स्थान घर नहीं होता, श्मशान होता है। शव का चाहे कितना भी श्रृंगार किया जाये, वह निरर्थक है। वैसे ही सत्य रहित जीवन की स्थिति होती है। वह भी सत्य की ऊष्मा से रहित निष्प्राण हो जाता है। असत्य धूएं के बादल के सदृश है। वे बादल भले ही उमड़-घुमड़कर आयें, किन्तु वे बिखरने के लिए होते हैं, बरसने के लिए नहीं! उन बादलों से भूमि की प्यास नहीं बुझ सकती, और न खेती ही लहलहा सकती है।

असत्य का मूल स्रोत

हमें सर्वप्रथम यह समझना होगा कि असत्य का मूल स्रोत कहां है? ऐसी कौन-सी आन्तरिक वृत्तियाँ हैं जिसके कारण असत्य जन्म लेता है। न्याय का यह पूर्ण निश्चित सिद्धान्त है कि बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। कारण में जो गुण होंगे, वे कार्य में भी अपने

---

१. 'सच्चं लोगम्मि सारभूयं।', प्रश्नव्याकरण, २।२
२. 'सच्चं···पभासकं भवति सव्वभावाणं।', वही, २।२
३. 'सच्चं···गंभीरतरं महासमुद्दाओ, सच्चं···सोमतरं चंदमंडलाओ, दित्ततरं सूरमंडलाओ।', वही, २।२
४. 'मणसच्चे, वयसच्चे, कायसच्चे।'
५. 'मनस्येकं वचस्येकं काये चैकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् काये चान्यद् दुरात्मनाम्॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप आयेंगे।[1] यदि कारण असत्य है तो कार्य सत्य कदापि सम्भव नहीं।

कल्पना कीजिए—एक कुम्भकार मिट्टी के बर्तन बना रहा है। वे मिट्टी के बर्तन जिनके मूल में मिट्टी है, वे सोने-चाँदी के नहीं बन सकते। जैसा कारण होगा, वैसा ही कार्य होगा। कारण-कार्य के नियमों में परिवर्तन नहीं हो सकता।

जैन दार्शनिकों ने कहा—असत्य का मूल-कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि के सत्य भाषण को व्यवहार की भाषा में सत्य कहा जा सकता है किन्तु वास्तविक दृष्टि से वह सत्य नहीं है, क्योंकि उसे सत्य-दृष्टि प्राप्त नहीं है। एक व्यक्ति जिसने मदिरा पी रखी हो और उस मदिरा के नशे में उन्मत्त बना हुआ हो। उस समय वह पिता को पिता, पुत्र को पुत्र, पत्नी को पत्नी और माता को माता कहता है और उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार भी करता है, स्थूल दृष्टि से वह सत्य प्रतीत होता है, तथापि वह अपने होश में नहीं है, उसका दिमाग दुरुस्त नहीं है। अत: वह दूसरे क्षण दूसरी बात भी कह सकता है। भाग्य के भरोसे जो कुछ भी मुंह से निकल जाये। पर वह स्वयं नहीं समझता है कि मैं क्या बोल रहा हूं? ऐसी ही स्थिति एक पागल व्यक्ति की भी होती है। वह एक क्षण में प्रेम से वार्तालाप करता है तो दूसरे क्षण खूंख्वार भेड़िये के समान मारने के लिए भी लपक सकता है। उसके मुंह से निकली हुई सत्य बात भी प्रमाण रूप नहीं मानी जा सकती, क्योंकि उसमें विवेक और विचार का आलोक नहीं है। जिसकी दृष्टि में मिथ्यात्व की मलिनता है, अज्ञान का गहन अन्धकार है, उसका सत्य, सत्य नहीं है। सत्य वही होता है, जिसे विवेकदृष्टि प्राप्त हो चुकी है और जिसे सत्य-दृष्टि उपलब्ध हो जाती है, वह अनन्त, अपरिमित, और असीम सत्य के संदर्शन कर सकता है।

सत्य-दृष्टि और सत्य

सत्य और सत्य की दृष्टि में अन्तर है। जो सम्यग्दृष्टि साधक है, उसकी दृष्टि सम्यक् होती है जिसके कारण वह जो भी ग्रहण करता है, वह सत्य के लिए होता है। यदि सम्यग्दृष्टि भ्रान्तिवश असत्य का आचरण कर भी ले किन्तु ज्ञात होने पर वह अपनी भ्रान्ति और तज्जन्य आचरण को स्वीकारने में भी संकोच नहीं करता और उसी समय उस आचरण को छोड़ देता है। जब उसे यह परिज्ञात हो जाये कि उसका कथन सत्य नहीं है तो वह उसी क्षण सत्य को स्वीकार कर लेता है। आचार्य देववाचक ने स्पष्ट शब्दों में कहा है[2]—"यदि मिथ्या-दृष्टि सम्यक्श्रुत को भी ग्रहण करेगा तो वह भी सम्यक्श्रुत उसके लिए मिथ्या में ही परिणत होगा और यदि सम्यग्दृष्टि मिथ्याश्रुत को ग्रहण करेगा तो वह भी उसके लिए सम्यग्श्रुत के रूप में परिणत होगा।" जैसे—गाय घास को भी दूध के रूप में परिणत करती है और सर्प दूध को भी जहर के रूप में परिणत कर देता है, वैसे ही जिसकी दृष्टि सम्यक् है उसके द्वारा जो भी ग्रहण किया जायेगा, वह सम्यक् ही होगा और मिथ्यादृष्टि द्वारा ग्रहण किया हुआ मिथ्या बनेगा। सम्यग्दृष्टि जहर को भी अमृत के रूप में परिणत कर देता है और मिथ्यादृष्टि अमृत को जहर के रूप में। यदि हमारा मन सत्य को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है तो हम सत्य को ग्रहण नहीं कर सकते। यदि हमारे में सत्य-दृष्टि है तो हमें प्रत्येक परिस्थिति और वस्तु में सत्य के दर्शन हो सकते हैं।

असत्य बोलने के कारण

भगवान् महावीर ने असत्य भाषण के कारणों पर चिन्तन करते हुए कहा है—मुख्य रूप से असत्य चार कारणों से बोला जाता है—क्रोध से, लोभ से, भय से और हास्य से।[3] जब मन में क्रोध की आँधी चल रही हो, लोभ का बवण्डर उठ रहा हो, भय का भूत मन पर हो, और हास्य का प्रसंग हो, उस समय मानव सहज ही असत्य-भाषण करता है, क्योंकि ये विकार जीवन की पवित्रता और मानव के विवेक को नष्ट कर देते हैं, जिससे उसकी वाणी और व्यवहार में असत्य प्रस्फुटित होता है।

यदि मन में दया की स्रोतस्विनी प्रवाहित नहीं हो रही हो, अपितु प्रतिशोध की अग्नि भड़क रही हो, एक-दूसरे को हीन बताने का प्रयत्न चल रहा हो तो मनुष्य कर्कश भाषा का प्रयोग करता है। इस प्रकार की कर्कश, कठोर, प्राणियों को परिताप देने वाली, सपापकारी सत्य भाषा भी असत्य है; क्योंकि अन्तर्मानस में जो वैभाविक भावनाएं पनप रही हैं वे सत्यवाणी को भी असत्य में परिणत कर देती हैं। इसके विपरीत यदि मन में अहिंसा का आलोक जगमगा रहा हो, करुणा-दया की शीतल सरिता प्रवाहित हो, तो वाणी के द्वारा असावधानी से निकला हुआ असत्य भी सत्य है।

जैन दार्शनिकों ने व्यक्ति की वाणी की अपेक्षा विचारों को और भाषा की अपेक्षा भावों को अधिक महत्त्व दिया है।

---

१. 'कारणगुणपूर्वको हि कार्यगुणो दृष्ट:।'

२. 'एयाणि मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छासुयं।
एआणि चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइं सम्मसुयं ॥', नन्दीसूत्र

३. 'सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि—से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा नेव सयं मुसं वएज्जा…।', दशवैकालिक, ४/१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य अगस्त्यसिंह स्थविर[1], आचार्य जिनदास महत्तर[2] और आचार्य हरिभद्र[3] ने असत्य के चार कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्हें उपलक्षणमात्र बताया है। क्रोध से मान को भी सूचित किया गया है। लोभ से माया को भी ग्रहण किया गया है। भय और हास्य का कथन करने से राग-द्वेष, कलह, अभ्याख्यान आदि कारणों का भी ग्रहण किया गया है। इस तरह अनेक वृत्तियों से असत्य बोला जाता है।

दशवैकालिक की अगस्त्यसिंह चूर्णि[4] और जिनदास चूर्णि[5] में मृषावाद के चार प्रकार बताये गये हैं—

(१) **सद्भाव प्रतिषेध**—जो है, उसके सम्बन्ध में यह कहना है कि यह नहीं है, जैसे—जीव, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में कहना कि ये नहीं हैं।

(२) **असद्भाव उद्भावना**—जो नहीं है, उसके सम्बन्ध में कहना कि वह है, जैसे—आत्मा के सर्वगत और सर्वव्यापी न होने पर भी उसे उस प्रकार का बतलाना या आत्मा को श्यामाक, तन्दुल के समान कहना।

(३) **अर्थान्तर**—एक वस्तु को अन्य बताना, जैसे—गाय को घोड़ा कहना, घोड़े को गाय कहना आदि।

(४) **गर्हा**—जैसे—काणे को काणा कहना, अन्धे को अन्धा कहना, नपुंसक को नपुंसक कहना। इस प्रकार के वचन बोलना जिससे सुनने वाले को पीड़ा हो।

यदि कोई मानव दुर्भाग्य से काणा या अन्धा हो गया है, उसे एकाक्षी या अन्धा कहना, लौकिक दृष्टि से भले ही सत्य हो, पर मर्मकारी भाषा होने से वह सत्य नहीं है।[6] ऐसे कथन में व्यंग्य और घृणा रही हुई होती है। बोलने वाला व्यक्ति सुनने वाले के चित्त पर चोट करके हर्षित होता है। उसे हीन बताकर अपनी महानता प्रदर्शित करना चाहता है। उसके अन्तर्मानस में आसुरी वृत्ति अठखेलियाँ कर रही होती है। जिससे वह उस व्यक्ति को खिझाना व चिढ़ाना चाहता है। अन्धे का अन्धा और काणे को काणा कहना यह तथ्य हो सकता है पर सत्य नहीं। तथ्य हितकर ही हो यह बात नहीं है, वह अहितकर भी होता है। उसमें राग-द्वेष का सम्मिश्रण भी होता है, इसलिए वह सत्य भी असत्य है।

सत्य कहो पर चुभने वाला न हो, जो असर करे पर हृदय में छेद न करे। वही सत्य बोलो, जो जन-जन का कल्याण करने वाला हो।

सत्यं शिवं सुन्दरम्

सत्य के लिए भारतीय चिन्तकों ने कहा—'वह सुन्दर हो, कल्याणकारी हो।' जो केवल सुन्दर ही है और कल्याणकारी नहीं है तो वस्तुतः वह सत्य नहीं है। इसीलिए **सत्यं शिवं सुन्दरम्** कहा गया है। सत्य एक ऐसी साधना है जिसे प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार कर सकता है। व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे ग्रहण कर सकता है।

स्कन्दपुराण में कहा है—सत्य बोलो, प्रिय बोलो, किन्तु अप्रिय सत्य कभी मत बोलो। और प्रिय असत्य भी मत बोलो।[7] परहित में वाक् और मन का यथार्थ भाव ही सत्य है।[8] योगसूत्रकार पतंजलि ने कहा है—सत्य-प्रतिष्ठित व्यक्ति को वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।[9] यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक पूर्ण रूप से सत्यवादी रहे तो उसकी प्रत्येक बात यथार्थ होगी। एतदर्थ ही यजुर्वेद के ऋषि ने कहा—सत्य के पथ पर चलो।[10]

---

१. दशवैकालिक, अगस्त्यसिंहचूर्णि
२. दशवैकालिक, आचार्यजिनदासचूर्णि, पृष्ठ-१४८
३. दशवैकालिक, हारिभद्रीयटीका, पत्र-१४६
४. दशवैकालिक, अगस्त्यसिंहचूर्णि
५. दशवैकालिक, जिनदासचूर्णि, पृष्ठ-१४८
६. 'तहेव काणं काणे त्ति, पंडगं पंडगे त्ति य।
वाहियं वावि रोगित्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥', दशवैकालिक, ७।१२
७. 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥', स्कन्दपुराण, ब्रा० ध० मा०, ६।८८
८. 'परहितार्थं वाङ्मनसो यथार्थत्वं।'
९. 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।', योगसूत्र, २।३६
१०. 'ऋतस्य पन्था प्रेत !', यजुर्वेद, ७।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव का श्रेष्ठ गुण : सत्य

ऋग्वेद में कहा गया है—जो व्यक्ति दुष्कर्मी हैं, वे सत्य के पवित्र पथ को पार नहीं कर सकते।[१] इसीलिए यजुर्वेद में ऋषि ईश्वर से प्रार्थना करता है—मैं असत्य से बचकर सत्य का अनुगामी बनूं।[२] सत्य ही बोलो, असत्य कभी मत बोलो।[३] अथर्ववेद के अनुसार असत्यवादी वरुण के पाश में पकड़ा जाता है। उसका उदर फूल जाता है।[४] आचार्य मनु का मन्तव्य है कि इस लोक में भी असत्य बोलने वालों को घोर पापी माना जाता है। तस्कर केवल दूसरों के धन का अपहरण करता है, पर मृषावादी अपनी आत्मा के सद्गुणों का भी अपहरण करता है।[५] सज्जनों के बीच किसी बात को न बतलाना भी असत्य है। शब्द और अर्थ को तोड़-मरोड़कर उल्टे-सीधे रूप में प्रस्तुत करना, असत्य के साथ ही स्तेय-कृत्य की तरह है।[६] शतपथ ब्राह्मण में सत्य को मानव का सर्वश्रेष्ठ गुण कहा है। इसके अभिमतानुसार असत्यभाषी अपवित्र है। वह किसी भी यज्ञ आदि पवित्र कार्य को करने का अधिकारी नहीं है।[७] सत्य के द्वारा ही मानव में तेजस्विता आती है। उसका नित्य अभ्युदय होता है तथा वह सिद्धि को वरण करता है। जो व्यक्ति सत्य बोलता है, उसका तेज प्रतिपल-प्रतिक्षण बढ़ता है और असत्य बोलने वाले का तेज क्षीण होता चला जाता है। अतः सदा सत्य भाषण करना चाहिए।[८]

सृष्टि सत्य पर प्रतिष्ठित है

ऋग्वेद के ऋषि ने सत्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। उनका अभिमत है कि सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में सर्वप्रथम ऋत और सत्य उत्पन्न हुए। सत्य से ही आकाश, पृथ्वी, वायु स्थिर हैं। सत्य के समक्ष असत्य की किंचित् भी प्रतिष्ठा नहीं है।[९] एक अन्य वैदिक आचार्य ने भी कहा है—पृथ्वी सत्य पर आधृत है। सत्य के कारण ही आकाश-मण्डल में चमचमाता हुआ सूर्य सारे विश्व को प्रकाश और ताप देता है। सत्य के कारण ही शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन प्रवाहित है। और तो क्या? विश्व की जितनी भी वस्तुएं हैं, वे सत्य पर प्रतिष्ठित हैं।[१०] शिव-पुराण में कहा है—तराजू के एक पलड़े में हजारों अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य को रखा जाये और दूसरे पलड़े में सत्य को रखा जाये तो हजारों अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य से बढ़कर सत्य का पुण्य है।[११] इसीलिए वाल्मीकि ऋषि ने राम के पवित्र चरित्र का उट्टंकन करते हुए लिखा है कि राम ने अपने प्राणों के लिए भी कभी मिथ्याभाषण नहीं किया।[१२] राम ने स्पष्ट शब्दों में कहा—न मैं पहले कभी झूठ बोला हूं और न कभी आगे झूठ बोलूंगा।[१३] सन्त तुलसीदास ने भी सभी सुकृत्यों का मूल सत्य को बताया है।[१४] अथर्ववेद के मंत्र विभाग में महर्षि शौनक की जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य अंगिरा ने सत्य की गौरव-गरिमा गाते हुए कहा—सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिससे आप्तकाम ऋषिगण प्रस्तुत पद को प्राप्त होते हैं। जहां पर सत्य का परम विधान है।[१५] शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—सत्यवादी को प्रारम्भ में भले ही विजय प्राप्त न हो, पर अन्त में विजय सत्यवादी की ही होती है। जैसे—देवताओं और असुरों

---

१. 'ऋतस्य पन्था न तरति दुष्कृतः', ऋग्वेद, ९/७३/६
२. 'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि', यजुर्वेद, १/५
३. (क) 'सत्यं वद', उपनिषद्
 (ख) 'सत्यमेव वद नानृतम्', बोधायनधर्मसूत्र, ६/६
४. अथर्ववेद, ४/१६
५. मनुस्मृति, ४/२२५
६. 'सर्वस्तेयकृत', मनुस्मृति, ४/२५६
७. शतपथब्राह्मण, ३/१/२/१० तथा १/१/१/१
८. शतपथब्राह्मण, २/२/१/१९
९. ऋग्वेद, ७/१०४/१२
१०. 'सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
 सत्येन वायवो वान्ति, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥'
११. 'अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलयाधृतम्।
 अश्वमेध सहस्राद्धि, सत्यमेकं विशिष्यते॥', शिवपुराण, उ० सं०, १२/२५
१२. 'दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
 अपि जीवितहेतोर्वा, रामः सत्यपराक्रम॥', वाल्मीकि रामायण, ५/३३/२५
१३. 'अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।'
१४. 'सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।', रामचरितमानस, २/२७/६
१५. 'सत्यमेव जयति नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः।
 येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानं॥', अथर्ववेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बीच भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में पहले देवता पराजित होते रहे, अन्त में विजय उन्हीं की हुई।[1]

आत्म-साक्षात्कार का साधन : सत्य

सत्य से ही देवताओं ने असुरों पर विजय-वैजयन्ती फहराई थी। उनका अप्रतिम यश संवर्धित हुआ था। सत्य कष्टों को भी दूर करता है।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में मनु के पुत्र नाभानेदिष्ठ का एक मधुर प्रसंग है। नाभानेदिष्ठ ने सत्य बोलकर बहुमूल्य पारितोषिक प्राप्त किया था। इसलिए उसने विज्ञों को यह आदेश दिया कि आप सत्य बोला करें। मानवमात्र भूल का पात्र है। जीवन में भूल होना उतना बुरा नहीं है। यदि जीवन में कोई पाप भी हो गया है और उस पाप को मानव सत्य रूप में स्वीकार कर लेता है तो वह उस पाप से मुक्त हो जाता है।[3] उपनिषत्कार का मन्तव्य है कि सत्य से आत्मा उपलब्ध होता है।[4] सत्य आत्म-साक्षात्कार का साधन है। आत्मानुभूति का हेतु है।

सत्य पर चलना कठिन

जैन पुराण साहित्य में ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं, जहां असत्य भाषण से अनेक व्यक्तियों का पतन हुआ है। किंचित् असत्य भाषण भी विविध द्विविधाओं और पतन का कारण बन जाता है। जैसे—राजा वसु ने जान-बूझकर **अजैर्यष्टव्यम्** पद के मिथ्या अर्थ को सत्य मानकर उसका प्रतिपादन कर दिया था तथा मिथ्या अर्थ के पक्ष में निर्णय कर दिया था, जिससे उसका सिंहासन पृथ्वी में धंस गया था।

मानव-जीवन में यदि सत्य-निष्ठा नहीं है तो उसके जीवन में धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं है। धर्म की जड़ सत्य पर आधृत है। सामान्य रूप से सत्य पर दृढ़ रहना सहज नहीं है। सत्य का पथ तलवार की धार पर चलने से भी अधिक कठिन है। तलवार पर दो पैसे लेकर बाजीगर भी चल सकता है, अपनी कला दिखाकर जन-जन के मन को मुग्ध कर सकता है। किन्तु सत्य के मार्ग पर चलना अत्यधिक कठिन है। तलवार की धार पर चलने के लिए सतत जागरूकता अपेक्षित है। बिना तन्मयता के नुकीली धार पर चलना खतरे से खाली नहीं है। जरा-सी असावधानी से धार पैर को काट सकती है। किन्तु सत्य का मार्ग तलवार की धार से भी अधिक तीखा है। किंचित्मात्र भी असावधानी यहां नहीं चल सकती।[5] अतः सत्य के पथिक साधक को अत्यन्त जागरूकता के साथ अपने कर्त्तव्य पथ पर बढ़ना चाहिए।

सत्य और आचरण

भारत की शासकीय मुद्रा पर **सत्यमेव जयते** अंकित है। धार्मिक स्थलों पर भी सत्य बोलने के लिए प्रेरणा प्रदान की जाती है। चाहे धर्मनेता हों, समाजनेता हों या राष्ट्रनेता हों—वे सभी सत्य बोलने की प्रेरणा देते हैं और असत्य के परिहार के लिए कहते हैं। पर आज जीवन से और व्यवहार में सत्य कितना अपनाया जा रहा है, यह एक चिन्तनीय प्रश्न है।

पाश्चात्य दार्शनिक आर० डब्ल्यू० एमर्सन ने एक बार कहा था—सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनन्दन यह है कि हम जीवन में उसका आचरण करें। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा—जो व्यक्ति सत्य को जानता है तथा मन, वचन, काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमात्मा को पहचानता है। एक दिन वह मुक्ति को भी वरण कर सकता है।

सत्य : जीवन का आधार

एक पाश्चात्य चिन्तक ने लिखा है कि मानव-जीवन की नींव सत्य पर आधृत है। सत्य सम्पूर्ण जीवन और सृष्टि का एकमात्र आधार है। एमर्सन ने कहा है—सत्य वह है, जिसे सुन्दरतम और श्रेष्ठतम आधार पर मानव अपना जीवन अवस्थित कर सकता है। सत्य का आधार ही सर्वोपरि तथा सर्वश्रेष्ठ आधार है।

महाभारत के उद्योगपर्व में यह बताया गया है कि जिस प्रकार नौका के सहारे से व्यक्ति विशाल समुद्र को पार कर जाता है, वैसे ही मानव सत्य के सहारे नरक-तिर्यंच के अपार दुःखों को पार कर स्वर्ग प्राप्त कर लेता है।[6]

---

१. शतपथब्राह्मण, ३/४/२/८
२. शतपथब्राह्मण, ११/५/३/१३
३. *शतपथब्राह्मण*, २/५/२/२०
४. बृहदारण्यक-उपनिषद्, ३/१/५
५. 'क्षुरस्य धारानिशिता दुरत्यया, दुर्गंपथस्तत् कवयो वदन्ति।'
६. 'सत्यं स्वर्गस्य सोपानं, पारावारस्तु नौरिव।', महाभारत, उद्योग पर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य का मरहम

शरीर में जब तक ऊष्मा रहती है तब तक यदि शरीर पर मक्खी-मच्छर आदि बैठते हैं तो शरीर उसे सहन नहीं कर पाता। ऊष्मा समाप्त होने के पश्चात् यदि शरीर के टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये जायें तो भी उसे पता नहीं लगता। साधक के जीवन में भी सत्य की ऊष्मा रहती है, तब तक कोई भी दुर्गुणरूपी मक्खी-मच्छर उसे बर्दाश्त नहीं होता। शास्त्रों में बताया गया है—यदि किसी श्रमण से मोह की तीव्रता के कारण महाव्रत भंग हो गया हो और वह आचार्य, उपाध्याय या गुरुजन के समक्ष जाकर अपनी उस भूल को उनके सामने यथातथ्य बताकर तथा प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो जाता है तो उस श्रमण को आचार्य आदि वरिष्ठ पद भी दिया जा सकता है। महाव्रत-भंग जैसे भयंकर घाव को भी सत्यरूपी मरहम भर देता है। जिस श्रमण का सत्य महाव्रत पूर्ण रूप से सुरक्षित है, वह श्रमण अन्य महाव्रतों को भंग करने पर भी सुधर सकता है। वह अपनी गलती को गलती के रूप में स्वीकार कर अपनी शुद्धि कर सकता है। यदि साधक भूल करके भी भूल को भूल नहीं मानता है, उनका प्रायश्चित नहीं करता है तो उसका सुधार कभी भी सम्भव नहीं है, वह आराधक नहीं बन सकता।

जैसे गुरुतर व गुप्त व्याधि से ग्रसित रुग्ण व्यक्ति चिकित्सक के सामने गुप्त से गुप्त बात भी प्रकट कर देता है तो चिकित्सक उसके रोग का सही निदान कर देता है। चिकित्सक रुग्ण व्यक्ति के गलत कार्यों की निन्दा और भर्त्सना नहीं करता, अपितु औषधि देकर तथा शल्य चिकित्सा कर उसे जीवन-दान देने का प्रयास करता है। वैसे ही सद्गुरु रूपी चिकित्सक भी पापी से घृणा नहीं करते, पर प्रायश्चित देकर उसके अध्यात्म रोग को नष्ट कर स्वस्थ बनाते हैं।

सत्य का अपूर्व बल

सत्य का उपासक साधक स्वयं की गलतियों को गलती समझकर उन गलतियों को सुधारता है। एतदर्थ ही सत्य को स्वयंभू, सर्व-शक्तिमान् और स्वतीर्थगुप्त (रक्षित) कहा गया है।

सत्य में अपूर्व बल है। जिस साधक में सत्य का बल व्याप्त हो, वह साधक तोप व मशीनगनों के सामने भी सीना तानकर खड़ा हो जाता है, वह भय से कांपता नहीं है। बाइबिल में कहा है—सत्य ही महान् है और परमशक्तिशाली है। यह जनबल, परिजनबल, धनबल और सत्ताबल से भी बढ़कर है।

असत्य का बल चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो वह कागज की नौका की तरह और बालू के महल की तरह है। जिनके डूबने और ढहने में समय नहीं लगता। मैंने देखा है—दिल्ली में रामलीला के अवसर पर विशालकाय रावण के पुतले निर्मित होते हैं। जिसे देखकर मन में एक कुतूहल होता है कि इतने विशालकाय रावण को एक नन्हा सा राम कैसे समाप्त कर देगा? पर वह पुतला कागज और बांस की खपच्चियों से बना हुआ होता है जिसमें बारूद होता है। जरा-सी चिनगारी का स्पर्श पाते ही कुछ ही क्षणों में जलकर भस्म हो जाता है। यही स्थिति असत्य के आधार पर खड़े हुए बाह्य-आचरण की है। उसमें वास्तविकता एवं स्थिरता का अभाव होता है।

सत्य का दिव्य प्रभाव

सत्य का वट वृक्ष शनैः शनैः बढ़ता है, फलता है, फूलता है; पर उसकी जड़ें बहुत ही गहरी होती हैं। वह शताधिक वर्षों तक अपना अस्तित्व बनाये रखता है, आंधी और तूफान भी उसे धराशायी नहीं कर पाते। जबकि लताएं बहुत ही शीघ्रता से बढ़ती हैं और शीघ्र ही नष्ट भी हो जाती हैं। हल्का सा सूर्यताप उन्हें सुखा देता है। और मामूली वर्षा से ही वे सड़ जाती हैं। इसीलिए कहा है—"सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल होता है"। सत्यनिष्ठ व्यक्ति में इतना अधिक आत्मबल होता है कि उसके सामने भौतिक व अनैतिक बल टिक नहीं सकता।

आवश्यकसूत्र और प्रश्नव्याकरणसूत्र में सत्यवादी का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि सत्यवादी सत्य के दिव्य-प्रभाव से विराट्काय समुद्र को तैर सकता है। पानी उसे डुबा नहीं सकता और अग्नि उसे जला नहीं सकती। खौलता हुआ तेल, तप्त-लोहा, गर्म शीशा सत्यवादी के हाथ का संस्पर्श होते ही बर्फ की तरह शीतल हो जाते हैं। पर्वत की ऊंची चोटियों से गिरकर भी वह मरता नहीं। शत्रुओं से घिरने पर भी शत्रु उसका बाल-बांका नहीं कर पाते। यहां तक कि देव भी उसके चरणों की धूल लेने के लिए लालायित रहते हैं।

योगदर्शन में सत्य की अपार शक्ति का परिणाम प्रतिपादित करते हुए कहा है— **सत्य-प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्** सत्य का पूर्ण परिपाक हो जाने पर किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती। वह चाहे जिसे वरदान या अभिशाप दे, वह सत्य होकर ही रहता है।

सत्य सुदृढ़ कवच है

पाश्चात्य दार्शनिक कांट का अभिमत है, सत्य वह तत्त्व है जिसे अपनाने पर मानव भले-बुरे की परख कर सकता है। हृदय में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे हुए सभी सद्गुणों के विकास की चाबी मानव की सत्यनिष्ठा में सन्निहित है। असत्य दुर्गुणों की खान है। सत्य सभी सद्गुणों में श्रेष्ठ है, अतः आत्मबल की अभिवृद्धि और ईश्वरत्व संप्राप्त करने के लिए भारतीय तत्त्वचिन्तकों ने सत्य को सभी सद्गुणों में श्रेष्ठ सद्गुण माना है। चीन के महान् चिन्तक कन्फ्यूशियस का अभिमत है कि जो सत्यार्थी होगा, वह कर्मठ भी होगा। आलस्य और विलासिता असत्य की देन है।

सत्य का पवित्र पथ ऐसा पथ है, जिस पर चलने वाले को न अहंकारी सतायेगा और न माया ही परेशान करेगी। सत्य ऐसा सुदृढ़ कवच है, जिसे धारण करने पर दुर्गुण चाहे कितना भी प्रहार करे किन्तु सत्यवाद पर उनका कोई असर नहीं होगा। सत्य अभीष्ट फल प्रदान करने वाला है।

एक कवि ने कहा है—इस पृथ्वी पर ऐसा कौन सा मानव है जिसके हृदय को मधुर व सत्य वचन हरण नहीं करता है। वह सभी के हृदय को आकर्षित करने वाला महामंत्र है। संसार का प्रत्येक प्राणी प्रतिपल-प्रतिक्षण सत्य वचन सुनने की ही आकांक्षा करता है। देव भी सत्य वचन से प्रसन्न होकर मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। इसीलिए तीन लोकों में सत्य से बढ़कर अन्य कोई भी व्रत नहीं है।[१] उपनिषत्-कार ने कहा है—'सत्य ज्ञानरूप और अनन्तब्रह्मस्वरूप है।'[२]

सत्य महाव्रत की भावनाएं

गृहस्थ साधक सत्य को स्वीकार तो अवश्य करता है, पर परिपूर्ण रूप से वह सत्य का पालन नहीं कर पाता। उसका सत्य अणुव्रत होता है, किन्तु श्रमण सत्य को पूर्णरूप से स्वीकार करता है, इसलिए उसका सत्य सिर्फ व्रत नहीं, महाव्रत होता है।

क्रोध, लोभ, हास्य, भय, प्रमाद आदि मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के अस्तित्व में रहने पर भी मन, वचन और काया से तथा कृत, कारित और अनुमोदना से कभी भी झूठ न बोलकर हर क्षण सावधानीपूर्वक हितकारी, सार्थक और प्रियवचन बोलना सत्य महाव्रत है।[३] निरर्थक और अहितकारी बोला गया सत्य वचन भी त्याज्य है। इसी तरह सत्य महाव्रती को असभ्य वचन भी नहीं बोलना चाहिए।[४] 'यह भोजन बहुत ही अच्छा बना है, यह भोजन बहुत ही अच्छी तरह से पकाया हुआ है' इस प्रकार सावद्य वचन भी उसे नहीं बोलना चाहिए।[५] 'मैं प्रस्तुत कार्य को आज अवश्य ही कर लूंगा' इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा का भी प्रयोग श्रमण को नहीं करना चाहिए। क्योंकि सावद्य भाषा से हिंसा की और निश्चयात्मक भाषा के बोलने से असत्य होने की आशंका रहती है। इसलिए साधक को सदैव हितकारी, प्रिय व सत्य भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए।

मन से सत्य बोलने का संकल्प करना भावसत्य है, सत्य बोलने का प्रयास करना करणसत्य है और सत्य बोलना योगसत्य है। भावसत्य से अन्तःकरण विशुद्ध होता है, करणसत्य से सत्यरूप क्रिया को करने की अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है तथा योगसत्य से मन-वचन-काया की पूर्ण शुद्धि होती है।

अहिंसा के उदात्त संस्कारों को मन में सुदृढ़ बनाने के लिए जैसे पांच भावनाओं का निरूपण किया है, वैसे ही सत्य महाव्रत की सुदृढ़ता के लिए पांच भावनाएं प्रतिपादित की गई हैं। जो श्रमण इन भावनाओं का मनोयोगपूर्वक चिन्तन करता है, वह संसार सागर में परिभ्रमण नहीं करता।[६] भावनाओं के निदिध्यासन से व्रतों में स्थिरता आती है।[७] मनोबल दृढ़ होता है और निर्मल संस्कार मन में सुदृढ़ होते हैं। अतः भावनाओं का आगम-साहित्य में विस्तार से विश्लेषण किया गया है। आचारांग[८], समवायांग[९], और प्रश्नव्याकरण[१०] में भावनाओं का निरूपण है, पर नाम व क्रमों में कहीं-कहीं अन्तर है। उनके नाम इस प्रकार हैं —

---

१. 'प्रियं सत्यं वाक्यं हरति हृदयं कस्य न भुवि ?
गिरं सत्यां लोकः प्रतिपदमिमामर्थयति च ॥
सुराः सत्याद् वाक्याद् ददति मुदिताः कामितफलम् ।
अतः सत्याद् वाक्याद् व्रतमभिमतं नास्ति भुवने ॥'

२. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।'

३. उत्तराध्ययन, २५/१४; १९/२७

४. उत्तराध्ययन, २१/१४

५. उत्तराध्ययन, १/२४, ३६

६. उत्तराध्ययन, ३१/१७

७. 'तत्स्थैर्यार्थं भावना पंच-पंच ।'

८. आचारांग, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, १५वां भावना-अध्ययन

९. समवायांग, २५वां समवाय

१०. प्रश्नव्याकरणसूत्र, संवरद्वार, सातवां अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचारांग में—(१) अनुवीचिभाषण (२) क्रोधप्रत्याख्यान (३) लोभप्रत्याख्यान (४) अभय (भयप्रत्याख्यान) (५) हास्य-प्रत्याख्यान।

समवायांग में—(१) अनुवीचिभाषण (२) क्रोधविवेक (क्रोध का परित्याग) (३) लोभविवेक (लोभ का परित्याग) (४) भयविवेक (भय का त्याग) (५) हास्यविवेक (हास्य का त्याग)।

प्रश्नव्याकरण में—(१) अनुचिन्त्यसमितिभावना (२) क्रोधनिग्रहरूप क्षमाभावना (३) लोभविजयरूप निर्लोभभावना (४) भयमुक्तिरूप धैर्ययुक्त अभयभावना (५) हास्यमुक्तिवचनसंयमरूप भावना।

चरित्रप्राभृत[१] में—(१) अक्रोध (२) अभय (३) अहास्य (४) अलोभ (५) अमोह।

प्रश्नव्याकरण की भांति ही तत्वार्थसूत्र की टीकाओं सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक[२] में भी क्रम मिलता है।

इन पांचों भावनाओं में जिन कारणों से सत्य की साधना में स्खलनाएं हो सकती हैं उनसे अलग-थलग रहने के लिए प्रेरणा प्रदान की गई है। प्रतिपल-प्रतिक्षण चिन्तन करने से साधक में वे संस्कार बद्धमूल हो जाते हैं, जिससे वह किसी भी समय और परिस्थिति में असत्य का उपयोग नहीं कर सकता।

हम यहां प्रश्नव्याकरण को मूल आधार मानकर ही उन भावनाओं पर चिन्तन कर रहे हैं।

(१) अनुचिन्त्य-समिति-भावना

अनुचिन्त्य अथवा अनुविचिन्त्य से तात्पर्य है सत्य के विभिन्न पहलुओं पर पुन: पुन: चिन्तन कर बोलना। जब तक जीवन के कण-कण में एवं मन के अणु-अणु में सत्य पूर्णरूप से रम नहीं जाता, वहां तक सत्य की साधना व आराधना पूर्ण नहीं होती। सत्य की महिमा और गरिमा का तभी पता चलता है जब तक साधक मनोयोगपूर्वक उस पर गहराई से चिन्तन करता है। सत्य के महत्व को समझकर साधक उसके बाधकतत्वों[३] का परित्याग करता है।

सत्य के बाधक तत्व ये हैं—

(१) **अलीक वचन**—जो बात नहीं है उसे कहना, स्वयं की प्रशंसा करने के लिए और दूसरों को नीचा दिखाने के लिए झूठ बोलना।

(२) **पिशुन वचन अथवा चुगली**—नारद की भांति एक-दूसरे के विपरीत बात कहकर लड़ाना। एक राजस्थानी कवि ने चुगलखोर का वर्णन करते हुए कहा—वह बहुत ही खतरनाक प्राणी है, जिसके कारण सरसब्ज बाग वीरान और शहर उजड़ जाते हैं। पैशुन्य ऐसा चालाक तस्कर है जो सत्य रूपी धन को चुरा लेता है।

(३-४) **कठोर वचन तथा कटु वचन**—ये दोनों भी सत्य के शत्रु हैं। हित की बात भी कटु शब्दों में नहीं कहनी चाहिए। दूध को एक मिट्टी के बर्तन में रखकर पिलाया जाय और उसी दूध को चमचमाते हुए चांदी या स्वर्ण-पात्र में पिलाया जाय तो पीने वाले को अधिक आह्लाद किसमें होगा? स्वर्ण या चांदी के पात्र में। वैसे ही सत्य को भी मधुर शब्दों में कहा जाय तो वह अधिक प्रभावशाली होगा।

(५) **चपल वचन**—बहुत ही उतावली से, जल्दबाजी से बिना सोचे बोलना। व्यवहारभाष्य[४] में आचार्य ने लिखा है—अन्धा व्यक्ति जैसे अपने साथ आंख वाले व्यक्ति को रखता है, वैसे ही वाणी जो अन्धी है उसे अपने साथ बुद्धिरूपी नेत्र रखना चाहिए अर्थात् पहले अच्छी तरह बुद्धि से सोचकर फिर वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

साधक को सत्य के इन पांच बाधक तत्वों से बचना चाहिए।

यहां पर यह स्मरण रखना होगा कि आचारांग, समवायांग और प्रश्नव्याकरण में उल्लिखित 'अनुवीचि भाषण' या 'अनुविचिन्त्य

---

१. 'कोह भय हास लोहा मोहा विवरीय भावणा चेव।
विदियस्स भावणा ए पंचेव य तहा होंति॥', आचार्य कुन्दकुन्द : षट्प्राभृत में चारित्रप्राभृत, ३२

२. तत्त्वार्थसूत्र, ७/३ की टीकाएं

३. 'अलिय-पिसुण-फरुस- कडुय-चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए', प्रश्नव्याकरणसूत्र, संवर द्वार, सातवाँ अध्ययन

४. 'पुव्विं बुद्धिए पासेत्ता तत्तो वक्कमुदाहरे।
अचक्खुओ व नेयारं बुद्धिमन्नेसए गिरा॥', व्यवहारभाष्य, पीठिका-७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिति' के स्थान पर आचार्य कुन्दकुन्द ने 'अमोह' भावना का उल्लेख किया है। पर चारित्रप्राभृत के टीकाकार ने अनुवीचिभाषण ही रखा है[1] और अमोह का अर्थ अनुवीचिभाषणकुशलता किया है। आगम के टीकाकारों ने 'अनुवीचिभाषण' का अर्थ चिन्तनपूर्वक बोलना किया है, जबकि चारित्रप्राभृत की टीका में[2] 'वीचि' का अर्थ 'वचन-लहर' तथा 'वचन-तरंग' किया गया है। और उस वचन-तरंग का अनुसरण करके बोली जाने वाली भाषा को 'अनुवीचि' कहा गया है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि सूत्रों का अनुसरण करने वाली और पूर्वाचार्य व पूर्व परम्परा का अनुगमन करने वाली भाषा 'अनुवीचि' भाषा है। उसके पश्चात् प्रस्तुत भाषा के सम्बन्ध में भी चिन्तन चला। भट्टअकलंक ने दोनों ही अर्थों को स्वीकार किया है।[3]

सारांश यह है कि प्रस्तुत भावना में भाषा व उसके गुण-दोषों पर चिन्तन करके सत्य के प्रति मन में दृढ़ता बनाये रखी जाती है।

(२) क्रोध निग्रह रूप क्षमा भावना

यह द्वितीय भावना है। प्रथम भावना में चिन्तनपूर्वक विवेकयुक्त वचन बोलने का अभ्यास किया जाता है। निरन्तर अभ्यास करने से संस्कार सुदृढ़ हो जाते हैं।

असत्य भाषा के प्रयोग का प्रथम कारण क्रोध है। क्रोध का भूत जब मस्तिष्क पर सवार होता है तब विवेक लुप्त हो जाता है। वह दूसरों पर मिथ्या दोषों का आरोपण करने लगता है। उसे यह भान ही नहीं रहता कि मैं किसके सामने और क्या बोल रहा हूं। क्रोध अनेक दुर्गुणों की खिचड़ी है, इसीलिए प्रस्तुत भावना में क्रोध से बचकर क्षमा को धारण करने का संकल्प किया जाता है। मन को क्षमा से भावित करने का उपक्रम करना ही इस भावना का मूल उद्देश्य है।

(३) लोभ विजय रूप निर्लोभ भावना

क्रोध की तरह लोभ भी सत्य का संहार करने वाला है। क्रोध से द्वेष की प्रधानता होती है तो लोभ में राग की प्रधानता। सूर्य के चमचमाते हुए दिव्य प्रकाश को उमड़-घुमड़ कर आने वाली काली-कजराली घटाएं रोक देती है और अन्धकार मंडराने लगता है। वैसे ही लोभ की घटाओं से भी मानव का विवेक धुंधला हो जाता है, सत्य सूर्य का प्रकाश मन्द हो जाता है।

लोभ के कारण मानव असत्य भाषण करता है। सत्य का साधक लोभ से बचने के लिए इस प्रकार चिन्तन करता है कि जिन पर-पदार्थों पर मैं मुग्ध हो रहा हूं, वे सभी वस्तुएं क्षणिक हैं। संसार के अपार कष्ट इन वस्तुओं के प्रति ममत्व एवं लोभ के फल ही हैं। अतः वह निर्लोभ-भावना का चिन्तन कर लोभ की वृत्ति को नष्ट करने में सतत प्रयत्नशील रहता है।

(४) भयमुक्तियुक्त अभय भावना

लोभ मीठा जहर है जो साधक के जीवन रस को चूस लेता है, उसे विषमिश्रित कर देता है तो भय कटुक जहर है जो साधक के जीवन को संत्रस्त कर देता है। भय का संचार होते ही व्यक्ति की बुद्धि कुंठित हो जाती है, वह करणीय तथा अकरणीय का यथातथ्य निर्णय नहीं कर पाता।

स्थानांग[4] में सात भय बताये हैं—(१) इहलोकभय (२) परलोकभय (३) आदानभय (४) अकस्मात्भय (५) वेदनाभय (६) मरणभय (७) अपयशभय। इन भयों के कारण मानव असत्य भाषण करता है।

भयभीत व्यक्ति सत्य नहीं बोल पाता। इसलिए आगम साहित्य में साधक को यह स्पष्ट आदेश दिया है कि तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। भय के दुष्परिणामों पर चिन्तन कर अभय बनाने का प्रयास करना चाहिए।

सुप्रसिद्ध विचारक इमर्सन ने लिखा है—भय अज्ञान से उत्पन्न होता है।

साधक भयविमुक्ति के लिए अभय भावना से आत्मा को भावित कर सत्य के चिन्तन को सुदृढ़ करता है।

---

१. 'अकोहणो अलोहो य भय हस्स विवज्जिदो।
अणुवीचि भोसकुसलो विदियं वदमिस्सदो ॥', चारित्रप्राभृत, गाथा ३२ की टीका

२. 'वीचा वाग्लहरी तामनुकृत्य या भाषा वर्तते सानुवीची भाषा—जिनसूत्रानुसारिणीभाषा-अनुवीचीभाषा-पूर्वाचार्यसूत्रपरिपाटीमनुल्लंध्य भाषणीयमित्यर्थः।', चारित्रप्राभृत, गाथा ३२ की टीका

३. 'अनुवीचिभाषणं अनुलोमभाषणमित्यर्थ—विचार्यभाषणं अनुवीचिभाषणमिति वा।', तत्त्वार्थराजवार्तिक, ७/५

४. स्थानांगसूत्र, स्थान-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) हास्य-मुक्तिवचन संयम रूप भावना

स्वास्थ्य के लिए मानव को सदा प्रफुल्लित रहना चाहिए। खिले हुए फूल की तरह उसका चेहरा होना चाहिए।

उत्तम मानवों की आंखें हंसती हैं। जब भी हंसने का प्रसंग आता है, उनकी आंखों से ऐसी रोशनी चमकती है कि मानव का मन आनन्द से विभोर हो जाता है। मध्यम मानव खिलखिलाकर हंसता है और अधम मानव अट्टहास करता है। उसके ठहाके से दीवारें गूंजने लगती हैं। इस प्रकार की हंसी असभ्यता व जंगलीपन का प्रतीक है। समझदार व्यक्ति बहुत कम हंसता है। वह हंसी-मजाक का परित्याग कर इन्द्रियों को संयत करता है।[1] राजस्थानी कहावत भी है—"रोग की जड़ खांसी, लड़ाई की जड़ हांसी।" हास्य सत्य का शत्रु है। एक कवि ने कहा—ए मानव! हंस मत! हंसना उच्चता का प्रतीक नहीं है। हंसने से अनेक दोष आ जाते हैं और गुण चले जाते हैं तथा लोग पागल समझते हैं।[2]

हंसी-मजाक करने वाला गम्भीर नहीं हो सकता। वह विवेकयुक्त शब्दों का चयन नहीं कर पाता, सत्य-असत्य का विवेक नहीं रख पाता। लोगों को हंसाने के लिए वह जोकर, विदूषक या भांड की तरह चेष्टा करता है, जिससे लोग हंसें। वह दूसरों का उपहास भी करता है, जिससे दूसरों के हृदय को आघात लगता है। एतदर्थ ही शास्त्रकारों ने साधक को हंसी-मजाक न करने के लिए प्रेरणा दी है।

यहां यह स्मरण रखना होगा कि हंसी-मजाक और विनोद में अन्तर है। विनोद में सौम्यता होती है, यथार्थता होती है। विनोद में इस प्रकार से शब्दों का प्रयोग होता है, जिससे किसी के दिल को पीड़ा नहीं होती, किन्तु हंसी-मजाक में दूसरों के मन में पीड़ा होती है। "एक व्यंग्य-वचन हजार गालियों से भी भयानक होता है" तथा "एक मसखरी सौ गाली" आदि लोकोक्तियां व्यंग्य-हास्य की भयंकरता का दिग्दर्शन कराती हैं। अतः साधक हंसी-मजाक का परित्याग करता है और संयम के द्वारा ऐसे संस्कार जागृत करता है जिससे उसकी वाणी पूर्ण संयत, निर्दोष और यथार्थ होती है। हित, मित, प्रिय, तथ्य व सत्य से संपृक्त होती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में सत्य के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ चिन्तन किया है। यों सत्य का स्वरूप बहुत ही विराट् है। शब्दों के संकीर्ण घेरे में उसे बांधना सम्भव नहीं, किन्तु संक्षेप में समझा तो जा ही सकता है।

प्रामाणिक हितकारक सद्वचन बोलना **सत्य** है।

असत्य भाषण के त्याग करने से **सत्य** वचन प्रकट होता है।

मनुष्य लोभ, भय, मनोरंजन, अज्ञानता आदि अनेक कारणों से असत्य बोलता है। क्रोध, अभिमान, व्यंग्य रूप से अन्य व्यक्ति को दुःखकारक, निन्दाजनक, पापवचन बोलना भी असत्य में सम्मिलित है, अतः सत्यवादी मनुष्य को ऐसे वचन मुख से उच्चारण नहीं करने चाहियें।

कोहभयलोहहासपइण्णा अणुवीचिभाषणं चेव।
विदियस्स भावणाबो वदस्स पंचेव ता होंति॥ —मूलाचार, ३३८

सदैव अपने मुख से प्रामाणिक, सत्य, स्व-परहितकारी, मृदु वचन बोलने चाहिएं, अपने सेवकों से, भिखारी, दीन, दरिद्र व्यक्तियों से सांत्वना तथा शान्तिकारक मृदु वचन बोलने चाहिएं। पीड़ाकारक कठोर बात न कहनी चाहिए क्योंकि उनका हृदय पहले ही दुःखी होता है कठोर वचनों से और अधिक दुखेगा। यह जिह्वा यदि अच्छे वचन बोलती है तो वह अमूल्य है। यदि यह असत्य, भ्रामक, भयोत्पादक, पीड़ादायक, कलहकारी, क्षोभकारक निन्दनीय वचन कहती है तो यह जीभ चमड़े का अशुद्ध टुकड़ा है।

सत्यं प्रियं हितं चाहुः सूनृतं सूनृतव्रताः।
तत्सत्यमपि नो सत्यमप्रियं चाहितं च यत्॥ —अनगार-धर्मामृत, ४२

(आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज कृत उपदेशसारसंग्रह, भाग-१, जयपुर, वि० सं० २०३६ से उद्धृत)

---

१. 'सव्वं हासं परिच्चज्ज अल्लीण गुत्तो परिव्वए।', आचारांग, ३१२

२. 'हंसिए नहीं गिवार, हंसिया हलकाई हुवै।
हंसिया दोष अपार, गुण जावै गहलो कहै॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org